ईश्वर चंद्र विद्यासागर

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

मनीष कुमार

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

आधुनिक भारत के निर्माताओं में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वह एक लेखक, समाज-सुधारक और शिक्षाशास्त्री के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने शिक्षा केमहत्त्व को समझा और बँगला भाषा के व्याकरण व वर्तनी केनियम बनाए। उन्होंने बालिका शिक्षा व विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दिलाई। भारतीय समाज में उठाया गया यह एक क्रांतिकारी कदम था।

ईश्वरचंद्र का जन्म 26 सितंबर, 1820 को मिदनापुर जिले (पश्चिम बंगाल) के बीरसिंग गाँव में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकेपिता ठाकुरदास साधारण नौकरी करते थे।

ईश्वरचंद्र में पिता केसमस्त गुण मौजूद थे। जन्म के समय उनकी जन्मपत्री दिखाने पर पंडित ने बताया था—'यह बैल की तरह अड़ियल बनेगा; लेकिन प्रसिद्ध, ईमानदार और सत्यमार्गी भी होगा।'

तभी से उनके दादा व पिता उन्हें प्यार से 'एडेबाछूर' (बछड़ा) पुकारने लगे।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर बचपन में बहुत शरारती थे। वह पड़ोसियों केबगीचे से फल व फूल तोड़ लाते थे। दोस्तों केसाथ घंटों खेलते रहते थे, लेकिन पढ़ने में बहुत तेज थे।

उन दिनों गाँवों की पाठशालाओं में भाषा लिखना, पढ़ना और साधारण गणित हल करना ही सिखाया जाता था। इसकेबाद योग्य ब्राह्मण लड़कों को संस्कृत पढ़ने केलिए 'टोल्स' (गुरुकुल) भेज दिया जाता था। किंतु बीरसिंग गाँव की पाठशाला केगुरु महाशय बच्चों को बहुत मारते थे, इसलिए ठाकुरदासजी ने ईश्वरचंद्र को अपने एक मित्र कालीकांत चट्टोपाध्याय के पास पढ़ने के लिए भेजा, जो उनके गाँव के ही रहनेवाले थे।

उन्होंने तीन वर्ष में ही पाठशाला की पढ़ाई पूरी कर ली। उनकी योग्यता देखकर कालीकांतजी ने उनकेपिता से कहा, ''अब इसे अंग्रेजी की उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता के अच्छे स्कूल में भेज दो।''

किराए के अभाव में ईश्वरचंद्र के पिता एक नौकर को साथ लेकर उन्हें कलकत्ता पहुँचाने पैदल गए। कलकत्ता बीरसिंग गाँव से 60 मील दूर था। रास्ते में पिता और नौकर ईश्वरचंद्र को बारी-बारी से कंधे पर बैठाकर चलते रहे।

ईश्वरचंद्र को तब अंग्रेजी की गिनती नहीं आती थी, लेकिन वह रास्ते में लगे मील के पत्थरों को पढ़कर पूछते रहे। पिता उन्हें अच्छी तरह समझाते रहे। इस तरह उन्हें रास्ते में ही अंग्रेजी की गिनती की साधारण जानकारी हो गई। तीसरे दिन शाम को वे हुगली नदी पार कर कलकत्ता स्थित बड़ा बाजार पहुँच गए।

वहाँ ठाकुरदास और उनके संबंधियों में सलाह-मशविरा हुआ कि ईश्वरचंद्र को अंग्रेजी माध्यमवाले हिंदू कॉलेज में भेजा जाए या संस्कृत कॉलेज में। काफी सोच-विचार के बाद ईश्वरचंद्र को कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में प्रवेश दिला दिया गया।

ठाकुरदास ने बड़ा बाजार में ईश्वरचंद्र के लिए एक कोठरी किराए पर ली। उन्होंने पुत्र को पढ़ाने के लिए बड़ा संघर्ष किया। अपना पेट काटकर उनकी पढ़ाई के लिए पैसे बचाए।

पिता का यह त्याग व्यर्थ नहीं गया। ईश्वरचंद्र मेहनत और लगन से पढ़ते थे और फिर सभी कक्षाओं में अच्छे नंबरों से पास हुए। इतना ही नहीं, उन्होंने कई पुरस्कार भी जीते।

कॉलेज में लड़कियों का पढ़ने न जाना ईश्वरचंद्र को बहुत खटकता था। इस संबंध में उन्होंने अपने पिता तथा अन्य कई लोगों से चर्चा की, किंतु सभी ने लड़कियों को शिक्षा दिए जाने का विरोध किया। यह सुनकर उस समय तो ईश्वरचंद्र चुप रहे, किंतु इस बारे में वह बराबर सोचते रहे कि लड़कियों को कैसे शिक्षा की डगर पर लाया जाए।

इसी बीच चौदह वर्ष की उम्र में उनका विवाह बीरसिंग के निकट खीरपाई गाँव के मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार की लड़की दीनमई देवी के साथ कर दिया गया। विवाह के बाद उनकी पत्नी गाँव में ही रह गईं और वे अपनी शिक्षा पूरी करने कलकत्ता चले आए।
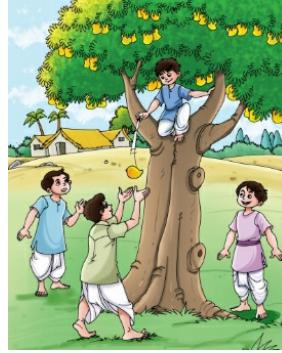
उन दिनों संस्कृत कॉलेज में छात्र टाट-पट्टी पर बैठकर पढ़ते थे और किताबों को कपड़े में लपेटकर लाते थे। पांडुलिपि से अध्याय की कॉपी करते थे। अंग्रेजी नियमित विषय नहीं था। ईश्वरचंद्र को जयगोपाल नामक एक संस्कृत विद्वान् ने साहित्य की शिक्षा दी। उन्होंने सन् 1834-35 में साहित्य की अंतिम परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्होंने अलंकार, वेदांत व स्मृति की पढ़ाई की और अठारह वर्ष की आयु में 'विद्यासागर' की परीक्षा पास कर ली। 'विद्यासागर' उन दिनों संस्कृत की सबसे बड़ी शिक्षा उपाधि थी। हिंदू लॉ कमेटी की इस परीक्षा को सन् 1839 में पास करके वह हिंदू लॉ ऑफिसर के पद के योग्य हो गए थे।

इसकेबाद ईश्वरचंद्र को पूर्वी बंगाल के त्रिपुरा जिले में जज-पंडित के पद हेतु नामांकित किया गया। वहाँ उन्होंने पं. नकमी चंद शिरोमणि और पं. जयनारायण तारकापंचानन से शिक्षा प्राप्त की। सन् 1840-41 की परीक्षा में वह प्रथम आए। उन्हें प्रथम आने पर 100 रुपए, संस्कृत में श्रेष्ठ काव्य-संयोजन के लिए 100 रुपए, श्रेष्ठ देवनागरी लिपि के लिए 8 रुपए और कंपनी लॉ में दक्षता के लिए एक वर्ष तक 25 रुपए का मासिक वजीफा दिया गया।

ईश्वरचंद्र ने सारी राशि लाकर अपने पिता को दे दी। पिता ने उसका कुछ अंश बीरसिंग में भूमि खरीदने के लिए रखा, ताकि वहाँ पाठशाला खोलकर संस्कृत की पांडुलिपियाँ खरीदी जा सकें। ये पांडुलिपियाँ आज भी बंगीय

साहित्य परिषद् (कलकत्ता) में देखी जा सकती हैं।

4 दिसंबर, 1841 को विद्यासागर को संस्कृत भाषा व साहित्य में दक्षता का प्रमाण-पत्र मिला। 10 दिसंबर को कॉलेज की शिक्षा परिषद् ने उन्हें विलक्षण योग्यता व मेरिट के लिए एक अतिरिक्त प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया। इस समय उनकी आयु इक्कीस वर्ष और कुछ महीने की ही थी।

पढ़ाई पूरी होते ही उनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कॉलेज के बंगाली विभाग में पंडित के पद पर हो गई। उनका वेतन 50 रु पए मासिक था। अपनी योग्यता तथा पढ़ाने के अच्छे ढंग के कारण शीघ्र ही कॉलेज में सभी की प्रशंसा के पात्र बन गए।

कॉलेज के सचिव श्री मार्शल उनसे काफी प्रभावित थे। उन्होंने विद्यासागर को अंग्रेजी व हिंदी सीखने में सहायता की। विद्यासागर दूसरे लोगों को संस्कृत सिखाया करते थे। उन्होंने बंगाली विद्यार्थियों को संस्कृत सिखाने की भिन्न तकनीक अपनाई थी।

सन् 1841 में संस्कृत कॉलेज में सहायक सचिव का पद रिक्त हुआ। शिक्षा परिषद् के सचिव डॉ. एफ.जी. माउंट के पूछने पर मार्शल ने विद्यासागर का नाम सुझाया। विद्यासागर ने प्रार्थना-पत्र के साथ कॉलेज में किए जानेवाले सुधारों का विवरण भी भेजा।
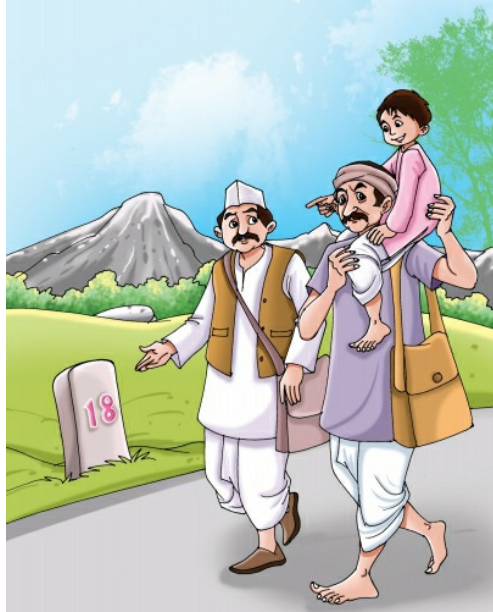
ईश्वरचंद्र 6 अप्रैल, 1846 को सहायक के पद पर नियुक्त हुए, किंतु कॉलेज में शिक्षा, शिक्षण आदि में सुधार संबंधी प्रतिवेदन पर मतभेदों के कारण उन्हें अप्रैल 1847 में त्यागपत्र देना पड़ा। लेकिन वह न तो हारे थे और न ही झुके थे, बल्कि उन्हें शिक्षा में सुधारों के लिए सही समय की प्रतीक्षा थी।

सन् 1847 में एक बार मि. मार्शल ने विद्यासागर को बुलाया। विद्यासागर ने संस्कृत कॉलेज में नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। मि. मार्शल ने विद्यासागर की सिफारिश भी की थी। किंतु पद पाने की इच्छा तथा धन की अत्यधिक आवश्यकता होते हुए भी उन्होंने वह पद स्वीकार नहीं किया। उस पद के लिए एक अन्य उम्मीदवार ताराशंकर वाचस्पति भी थे। विद्यासागर उन्हें अधिक योग्य उम्मीदवार मानते थे। विद्यासागर ने वह पद ताराशंकर को देने की सिफारिश की। उनके इस व्यवहार से मार्शल को आश्चर्य हुआ। काफी सोच-विचार के बाद वह पद

ताराशंकर को दे दिया गया। ताराशंकर उस समय दूर कालना में रहते थे। उन तक सूचना पहुँचाना मुश्किल था। ऐसे में विद्यासागर ने कालना स्थित उनके घर जाकर उन्हें नियुक्ति की सूचना भी दी।

कालना से वापस आकर उन्हें अपनी माँ का पत्र मिला। उनके भाई का विवाह तय हो चुका था। किंतु मि. मार्शल ने उन्हें छुट्टी नहीं दी। विद्यासागर उस रात सो नहीं सके। माँ की बात वह टाल नहीं सकते थे। अगले दिन उन्होंने मार्शल से स्पष्ट शब्दों में कहा, ''मिस्टर मार्शल! मुझे छुट्टी चाहिए, अन्यथा मुझे त्यागपत्र देना पड़ेगा।''

मार्शल विद्यासागर को खोना नहीं चाहते थे, अत: उन्हें छुट्टी देनी पड़ी। उस दिन तूफान आने के आसार दिखाई दे रहे थे, फिर भी विद्यासागर नहीं रुके। घर पहुँचने के लिए उन्हें दामोदर नदी पार करनी पड़ती थी। तूफान के कारण कोई नाविक दूसरी ओर नाव लेजाने के लिए तैयार नहीं था। कोई चारा न देखकर वह नदी में कूद पड़े, तैरकर नदी पार की और अपने घर पहुँच गए।

विवाह के बाद वापस आने पर उन्हें संस्कृत कॉलेज में एक और पद रिक्त होने की सूचना मिली थी। विद्यासागर ने भी अपना प्रार्थना-पत्र सुझावों सहित अधिकारियों के पास भेज दिया। उनके सुझावों ने कॉलेज समिति को बहुत प्रभावित किया। उनके सुझाव प्राध्यापक पद के दावेदार के समान थे।

जनवरी 1851 में उन्हें कॉलेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। कॉलेज में उन्होंने सबसे पहले अनुशासन पर ध्यान दिया, क्योंकि उन दिनों विद्यालय में अनुशासनहीनता का साम्राज्य था। उन्होंने अध्यापकों कोसमय पर कॉलेज पहुँचने का आदेश दिया। जब अध्यापक अनुशासित हो गए तो छात्रों को अनुशासित होने में देर नहीं लगी। उनके अनुशासन में कॉलेज में विधिवत् पढ़ाई होने लगी।

विद्यासागर चाहते थे कि कॉलेज में सभी जातियों के छात्रों को प्रवेश दिया जाए। शैक्षिक संस्थाओं में सुधार के बारे में वह अपने छात्र जीवन से ही सोचा करते थे।

अपने कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद वह लेखन के लिए भी समय निकाला करते थे। इसी प्रयास में सन् 1847 में उनकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम 'बेताल पंचविंशति' था, जो हिंदी में 'बेताल पच्चीसी' के नाम से लोकप्रिय हुई।

सन् 1847 में ही उन्हें बर्दवान, जो कलकत्ता से लगभग 60 मील पश्चिम में स्थित है, केमहाराजा महताब चंद ने अपने घर आमंत्रित किया। विद्यासागर महाराज के महल से ज्यादा शहर को देखने के इच्छुक थे। इसलिए उन्होंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया। महाराजा ने उन्हें स्वागतस्वरूप 500 रुपए मूल्य के दो कीमती शॉल भेंट किए। विद्यासागर ने उन्हें लेने से विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया और उसे विद्यालय के किसी गरीब अध्यापक को देने की प्रार्थना की। महाराजा विद्यासागर केव्यवहार से गद्गद हो गए। उन्होंने विद्यासागर के बारे में जैसा सुना था वैसा ही पाया। बाद में उन्होंने विद्यासागर द्वारा चलाए जा रहे समाज-सुधार के कार्यों में उनकी बहुत मदद की।

कुछ वर्षों के बाद महाराजा ने उन्हें बीरसिंग गाँव का तालुकेदार बनाना चाहा, किंतु विद्यासागर ने यह प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया। वह बोले, ''जब मैं अपनी जेब से पूरे तालुके में रहनेवालों का किराया जमींदार को देने योग्य हो जाऊँगा, तब शायद मैं इस बात पर विचार कर सकता हूँ।''

विद्यासागर का यह जवाब महाराजा को सचमुच चौंकानेवाला था। इतने बड़े पद को कोई महान् व्यक्ति ही ठुकरा सकता था।

एक दिन विद्यासागर की मुलाकात जॉन ड्रिंकवाटर बेथ्यून से हुई, जो उनके समान ही 'बालिका शिक्षा' केसमर्थक थे। दोनों ने मिलकर इस दिशा में काफी प्रयास किए। प्रारंभ में कई लोगों ने इसका विरोध किया, किंतु उन्होंने हार नहीं मानी। उनकेदृढ़ निश्चय और अथक प्रयासों से मई 1849 में कलक त्ता में बेथ्यून स्कूल की स्थापना हुई। उसकेसंचालन का भार भी विद्यासागर को सौंपा गया। यह भारत में बालिका शिक्षा की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। बालिका शिक्षा के बाद उनका अगला कदम समाज में फैली बहुपत्नी विवाह की परंपरा को रोकने के लिए था। उन्होंने महाराजा को बहुविवाह निषेध करने संबंधी याचिका भी भेजी थी।

लगभग डेढ़ वर्ष तक वह बेरोजगार रहे। उसकेबाद मार्च 1849 में उन्हें फ्रोर्ट विलियम कॉलेज में हेड राइटर व कोषाध्यक्ष केपद पर नियुक्ति मिली। वह 8 रुपए प्रतिमाह पर नियुक्त किए गए थे। केवल दो वर्ष तक कार्य करने केबाद दिसंबर 1850 में वह संस्कृत कॉलेज में साहित्य विषय केप्रोफेसर बने।

सन् 1853-54 में कलकत्ता के मदरसों में सुधारों व प्रेसीडेंसी कॉलेज की स्थापना के कार्य किए जाने लगे थे। बंगाल का प्रशासन विद्यासागर के महत्त्व को समझ चुका था। उन्हें साथ में लिये बिना बंगाल में शिक्षा-सुधार के कार्य सफल नहीं हो सकते थे। अत: मई 1855 में 'डायरेक्टर ऑॅफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन' द्वारा विद्यासागर को विद्यालयों का असिस्टेंट इंस्पेक्टर बना दिया गया। उन्हें 200 रु पए मासिक वेतन देना तय हुआ। विद्यासागर इस

दौरान संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल का कार्यभार भी सँभालते रहे और बंगाल के जिलों में भी दौरा करते रहे। उनके प्रयासों से ही 20 गाँवों में एक-एक मॉडल स्कूल स्थापित हो सका।

विद्यासागर ने बंगाल में विधवाओं के पुनर्विवाह कराने का भरपूर समर्थन किया। वास्तव में विधवाओं की दयनीय दशा विद्यासागर ने स्वयं देखी थी। उन दिनों विधवाएँ सामाजिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती थीं। बाल-विधवाओं का पूरा जीवन ही नरक जैसा हो जाता था। उन्होंने विधवा-विवाह को कानूनी मान्यता दिलाने के लिए प्रण कर लिया।

उन्होंने अपनी नई पुस्तक में भी विधवा विवाह का समर्थन किया। सन् 1854-55 में उन्होंने 'बंगाल स्पेक्टेटर' नामक पत्र में लिखे एक लेख में भी इसका जिक्र किया। उन्होंने इसके समर्थन में हस्ताक्षर अभियान भी चलाया और इस प्रश्न को विधानमंडल में उठवाने की बात कही।

इस दौरान हिंदुओं की संस्था 'धर्म सभा' व 'तत्त्वबोधिनी सभा' से भी सलाह ली गई। तत्त्वबोधिनी सभा के अंतर्गत महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोर द्वारा सन् 1843 में 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका का शुभारंभ किया गया था। मध्यम वर्गीय बंगालियों की इस सशक्त संस्था से विद्यासागर भी जुड़े हुए थे तथा पत्रिका के संपादक मंडल में भी थे।

सन् 1854 में उन्होंने विधवा-विवाह का विचार पत्रिका में रखा तथा उसके संपादक अक्षय कुमार दत्त ने अगले अंक में उनके विचारों का भरपूर समर्थन किया। पत्रिका में ही उन्होंने बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहुपत्नी विवाह का विरोध भी किया। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन करने का त्र्क खोजने के लिए कई शास्त्र पढ़ डाले। 'पाराशर संहिता', 'नारद पुराण' और 'अग्नि पुराण' में उन्होंने विधवा विवाह के पक्ष में तर्क ढूँढ़ लिये। अंततः उनके प्रयास रंग लाए और 17 नवंबर, 1855 को गवर्नर ने इसपर वैधानिक स्वीकृति प्रदान कर दी।

पहला विधवा विवाह बाबू राजकृष्ण बनर्जीके घर सन् 1856 में हुआ। इसमें श्रीशचंद्र विद्यारत्न वर और कालीमती देवी वधू थीं। दूसरा विधवा विवाह अगले ही दिन एक कायस्थ परिवार में हुआ था। तीसरा व चौथा विवाह ब्रह्म समाज के नेता राजनारायण बोस केघर में संपन्न हुआ। हर विवाह में विद्यासागर शामिल होते रहे। उन्होंने अपने पुत्र का विवाह भी एक विधवा से ही कराया।

कुछ कट्टरपंथी उनके इस कार्य से बहुत चिढ़ गए थे। उन्होंने विद्यासागर को सबक सिखाने के लिए कुछ गुंडों

को तैयार किया। विद्यासागर ने जब यह सुना तो वह स्वयं ही उस व्यक्ति के घर जा पहुँचे। यह देखकर वह व्यक्ति बहुत शर्मिंदा हुआ। खतरों को बढ़ता देखकर विद्यासागर के पिता ने उनके लिए लठैत अंगरक्षक भेजे, किंतु विद्यासागर ने उन्हें लाठी के बिना ही साथ चलने के लिए कहा। वह कहते थे कि मांस में लिपटी मेरी ये हड्डियाँ इन लाठियों से सौ गुना ज्यादा शक्तिशाली हैं।

विद्यासागर ने शिक्षा सुधार या विधवा विवाह के क्षेत्र में ही योगदान नहीं दिया, बल्कि सन् 1856 में बहुपत्नी विवाह का विरोध भी किया। उन दिनों कई बड़ी आयु के व्यक्ति कई-कई स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। उसके मरने पर उन सभी पत्नियों को जीवन भर कष्ट झेलना पड़ता था।

सन् 1864 में विद्यासागर ने अपने एक शिक्षाविद् मित्र पियरे के साथ मिलकर कलकत्ता में 'बंगाल टेंपेरेंस सोसाइटी' का गठन किया। इसका उद्‌देश्य सामाजिक सुधारों को तेज करना था।

सन् 1866-67 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। पूरे देश में सेवा कार्य तेज हो गए। विद्यासागर ने भी अपने गाँव बीरसिंग में भंडारा लगवाया, जहाँ प्रतिदिन 250 लोग भोजन करते थे। ऐसे में उन्होंने जात-पाँत को परे रखकर सेवा करने की प्रेरणा दी। अपनी माँ के कहने पर उन्होंने धन की व्यवस्था की और गरीबों को कंबल भी बाँटे। अकाल के बाद वे पुन: समाज-सुधार के कार्य में जुट गए।

विद्यासागर के समाज-सुधारों से बंगाल का हर भाग प्रभावित हुआ था। उनके द्‌वारा चलाए गए बहुपत्नी विरोधी आंदोलन को पूर्वी बंगाल में रासबिहारी मुखोपाध्याय ने जारी रखा था। ढाका से प्रारंभ होकर यह आंदोलन समूचे पूर्वी बंगाल में फैल गया था।

विद्यासागरजी ने 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका में इतिहास, दर्शन, धर्म, नीति, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र आदि विषयों पर कई लेख लिखे। सन् 1847 में उन्होंने अपने एक मित्र से 600 रु पए लेकर कलकत्ता में संस्कृत प्रेस की स्थापना की। इसमें पं. मदनमोहन तारकालंकार भी उनके साथ थे। इसी प्रेस में संस्कृत पुस्तकों के संग्रह के लिए 'संस्कृत प्रेस डिपोसिटरी' का कार्य भी आरंभ किया गया। माना जाता है कि उन्होंने 52 पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें से 17 संस्कृत में, 5 अंग्रेजी में तथा शेष बँगला भाषा में थीं।

विद्यासागर की उपलब्धियों ने समाज व शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की। इसके सम्मान में केंद्रीय शिक्षा

संस्थान ने उन्हें पदक देने की घोषणा की। लेकिन उक्त समारोह में विदेशी पोशाक पहनकर जाना था, इसलिए वे उस समारोह में नहीं गए। फलतः संस्थान द्वारा वह पदक उनके घर पर भिजवाया गया। ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया ने सन् 1880 में उन्हें सी.आई.ई. का यह सम्मान प्रदान किया था।
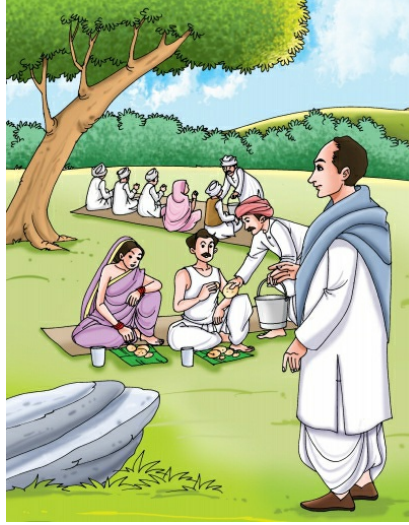
ईश्वरचंद्र विद्यासागर जीवन के अंतिम क्षणों तक सामाजिक बुराइयों के विरु द्ध लड़ते रहे। 29 जुलाई, 1891 को उनकी मृत्यु हो गई। उनके सम्मान में मेट्रोपॉलिटन इंस्टीट्यूट का नाम बदलकर 'विद्यासागर कॉलेज' कर दिया गया। वह बंगाल के उन सपूतों में से एक थे, जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल के पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।